ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-1, No.-1, PP-352-358, YEAR-2014

यूरोप तथा भारत में समाजशास्त्र : उद्भव की दशाएँ

❑ डॉ0 गौरी शंकर द्विवेदी

सार– *"To say that sociology as a specific field of inquiry originates with Comte is not to deny that his system was the meeting places of many minds.....Comte's chief contribution lay in his remarkable capacity for synthesis and organization rather than in the development Comte was n erudite man with power of eneyclopedic absorption, who greatly benifited from the intellectual labour of others.*

कोजर तथा रोजनवर्ग ने इन शब्दों में समाजशास्त्र के जन्म तथा जनक का परिचय दिया है। समाजशास्त्र के जनक का आविर्भाव उस युग में हुआ जिसने अभूतपूर्व तथा प्रचण्ड उत्थान, पतन, विध्वंस, विघटन तथा पुनर्निर्माण के प्रयास देखे थे। उस युग के विचारकों का विश्वास था कि समाज का पुनर्निर्माण उनकी हार्दिक इच्छाओं के अनुरूप किया जा सकता है। कोंत ने भौतिकी, रसायन शास्त्र तथा प्राणीशास्त्र प्रभृति विभिन्न विज्ञानों में हुई प्रगति का सर्वेक्षण तथा मूल्यांकन किया। उसने सोचा कि 'विज्ञानों के विज्ञान' के जन्म का समय आ गया है। उसने इसे शताब्दियों पूर्व प्रारम्भ चिन्तन प्रवृति के परिपाक के रूप में देखा। कोंत ने सोंचा कि –

"..... human intelligence had evolved to the point where social physics or Sociology, as a source of knowledge about man, was feasible, with that knowledge, the good society could be created, clearly, Comte's underlying motivation for the study of sociology was humanitarian.

उसे एक ऐसे विज्ञान की तलाश थी जिसका उद्देश्य हो 'भविष्यकथन हेतु ज्ञान प्राप्त करना तथा नियंत्रण करने हेतु भविष्यकथन करना'। उसके शब्दों में – "savior pour privoir of privoir pour pouvoir अर्थात (To know inorder to predict to predict on order to control) और उसे सौभाग्य से ऐसा वैज्ञानिक चिन्तन विरासत में प्राप्त हो रहा था। उस विज्ञान का नामकरण संस्कार इसीडोर आगस्त फ्रॉक्वा मेरी जैवियर कोंत (1798–1857) के हाथों सम्पन्न होना था। इसलिए कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं है कि समाजशास्त्र का जन्म तो इसके जनक से पूर्व ही हो चुका था जनक कोंत ने तो मात्र इसका नामकरण किया।

विचारों का उद्भव सदैव पूर्वकालिकता या पूर्वजों के ज्ञान के आधार पर होता है। फिर चाहे वह समाजशास्त्र हो या कोई अन्य शास्त्र। यह तो मात्र वैज्ञानिक या ऐतिहासिक संयोग था कि अगस्त कोंत के मन में परम्परा से ज्ञात विचारों को एक नये नाम से संबोधित करने की इच्छा हुई जिसे उसने 'पाजिटीव फिलासॉफी' में व्यक्त की। क्योकि जब से मानव का विकास हुआ होगा तभी से उसने अपने तथा अपने पर्यावरण के बारे में चिन्तन प्रारम्भ कर दिया होगा। मानव का सामाजिक तथा सामाजिकेय होना इसकी पुष्टि करता है। क्रेन ब्रिन्टन ने सही लिखा है कि 18वीं सदी में बौद्धिक शक्ति का अधिकांश मानव तथा मानव समाज के बारे में चिन्तन करने में बीता है। प्रबोधकालीन चिन्तन की प्रमुख विशेषताओं ने उसके उद्भव की आधारशिला रखी। अलौकि का प्राकृतिक, धर्म का विज्ञान, ईश्वरी न्याय का प्राकृतिक

एसोसिएट प्रोफेसर– समाजशास्त्र विभागाध्यक्ष, अमरनाथ मिश्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दूबेछपरा, बलिया (उ0प्र0), भारत

न्याय तथा पादरियों का दार्शनिकों द्वारा पदान्तरति किया जाना इस युग की प्रमुख विशेषताएं थी। तर्क तथा बुद्धि का विस्तार जिसके अधार पर सभी समस्याओं का निदान पाया जा सकता है। इसकी दूसरी विशेषता थी। मानव तथा समाज की पूर्णता में विश्वास तथा तदनुसार मानव प्रजाति के विकास की संभाव्यता इसकी तीसरी विशेषता थी। इन सबके फलस्वरूप मानवतावादी दृष्टि का उदय मानव के अधिकारों के प्रति माानवीय दृष्टि विशेषतः सरकारी अत्याचार तथा भ्रष्टाचार से मुक्ति पाने का अधिकार थे सब एक वैज्ञानिक क्रान्ति के सूत्रधार बनो जिसने फ्रांस की क्रान्ति को जन्म दिया।

अब चले यूरप की वैचारिक यात्रा पर जहाँ समाजशास्त्र के जन्म की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी।

फ्रांस– हम 18वीं सदी के सर्वश्रेष्ठ समाजशास्त्री मांटस्क्यू से प्रारम्भ करें। 18 जनवरी 1689 में बोर्दियों में जन्म, पेरिस के निकट स्थित कालेज में शिक्षा प्राप्त करना तथा पुनः 16 वर्ष की अवस्था में कानून का अध्ययन करने के लिए बोर्दियों वापस, कानून की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात पुनः 1713 में बोर्दियों में निवास, जहाँ उसने पाया अपने चाचा से उत्तराधिकार सम्पत्ति तथा संसद की प्रेसिडेन्सी। यही है उनका संक्षिप्त जीवन वृतान्त। 32 वर्ष की अवस्था में उसकी पहली कृति 'पर्सियन लटर्स' प्रकाशित हुई, जिसके आठ संस्करण पहले वर्ष में ही बिक गये। इसमें उसने विस्तार से फ्रांसीसी जीवन तथा फ्रांस की सामाजिक संस्थाओं विशेषतः परिवार की व्याख्या की है। उसकी दृष्टि में परिवार का उद्भव संविदा से नहीं हुआ है। परिवार समस्त संविदाओं के ऊपर है। दूसरी कृति – Considerations surlrs de is sgandeur des Romans et de leur dicadence (1734) में उसने रोमन साम्राज्य के पतन के कारणों की व्याख्या की है। इसमें उसकी बौद्धिक प्रतिभा तथा सामाजिक विश्लेषण की पैनी दृष्टि साफ झलकती है।

मांटेस्क्यू बीस वर्षो तक अपनी श्रम साध्य कृति– "The spirit of the Laws" पर काम करते रहे। 1748 esa & "On the Relations which must exist between the Laws and the constitution of each Government. The mannars, climate, Religion, commerce etc." उपशीर्षक से छपी पुस्तक अद्भूत तथा अनुपम समाजशास्तीय कृति है। मांटेस्क्यू की कृतियाँ अव्यवस्थित भले है किन्तु उनमें विधि, धर्म, वाणिज्य, प्रथा, शिक्षा, कृषि, संगीत, युद्ध, अपराध, जनसंख्या, विवाह, परिवार, तलाक, आत्महत्या जैसे विषयों की गंभीर व्याख्या की गयी है।

मांटेस्क्यू के बाद चिन्तन का दाय वाल्टेयर (1694–1778) को मिला जो समाजशास्त्री तो नही किन्तु कवि, नाटककार, संवाददाता, इतिहासकार तथा एक अतिवादी बुद्धिजीवी थे और उन्हें मानव की सहज अनुभूतियों की समानता में विश्वास था। वह अपने युग के बर्टेण्ड रसल थे। उसकी दृष्टि में विश्व के सभी मानव एक है। उसकी संपृच्छा का विषय रहा है। यह ज्ञात करना कि मानव असम्यावस्था से सभ्यावस्था तक कैसे पहुँच पाया है। इसी के समयुगीन रूसो थे (1721–78) जिनकी कृति "A Discourse on the moral effects of the Arts and Sciences" निश्चित रूप से एक समाजशास्त्रीय विवेचन है, अनुभवात्मक तथा तथ्यपरक। किन्तु 1762 में प्रकाशित – ''द सोशल कान्ट्रेक्ट'' का वर्ण्य विषय समाजशास्त्रीय न होकर राजशास्त्रीय है।

अन्यों के अतिरिक्त अन्तिम दार्शनिक जिसने क्रान्ति में भाग लिया, वह थे मेरी– ज्याँ– एन्टोनी– निकोलस कैरिटेड, मार्किबस द कांन्डोरसेंट (1742–1794)। उसके विचार अत्यन्त प्रगतिशील थे। उसने 1781 में दासता का विरोध किया तथा ष्टपमदके वजिीम छमहतवष नामक संस्था के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। उसने स्त्रियों के अधिकारों की वकालत की, मुक्त शिक्षा, वयस्क मताधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता तथा विपत्रों के लिए सुरक्षा का पक्ष पोषण किया। सही अर्थो में Even for the Enlightenment, he was an enlightened man" (प्रबोध के वह एक प्रबुद्ध मानव थे)।

सेंट सीमों तथा कोंत दोनों ही ने कांडोरसेट

की प्रसंशा की है किन्तु आलोचना के साथ।कोंत ने उसे अपना ''आध्यात्मिक पिता'' कहा है से उद्घृत करते हुए उसने लिखा – "After montesquieu the most important advance in the fundamantal conception of sociology was made by the unfortunale Condorset in his memorable work the esquisse".

यहाँ हम उल्लेख करना चाहेगें कि यह ऐतिहासिक संयोग ही था सिजने कोंत को समाजशास्त्र का जनक बना दियां। और इसके लिए मान्टेस्क्यू से कांडोरसेट तक अनेक चिन्तकों ने वैचारिक पृष्टभूमि तैयार की थी। वैसे समाजशास्त्र के जनक कहे जाने का श्रेय वस्तुतः इटली के विचारक ग्यम्बटिस्टा विको (1688–1744) को मिलना चाहिए था, तथा इसी कारण समाजशास्त्र का जन्म सौ वर्ष पहले हो चुका होता। किन्तु यह मात्र ऐतिहासिक कलाबिन्दु की क्रीड़ा नहीं थी। समाजशास्त्र का जन्म स्थान फ्रांस को ही होना था। मांटेस्क्यू से कंडोरसेट तक चिन्तन का जो सुसंगत विन्यास फ्रांस में मिलता है, वह यूरप के अन्य देशों में नहीं मिलता। इसीलिए विको प्रतिभाशाली विचारक होते हुए कोंत का स्थान न ले सकें....कदाचित् कोंत के पूर्वज होने के करण। कोंत की भाँति विको को भी ''त्रयी'' से प्यार था। चाहे भाषा का विकास हो या विश्व के अवबोधन की दृष्टि सभी जगह उसने तीन स्तरों की व्याख्या प्रस्तुत की है। तीन प्रकार की प्रथायें तथा तीन स्तरों पर आधारित विधि के विकास की व्याख्या इनमें प्रमुख है।

जॉन स्टुअर्ट मिल ने 1844 में कोंत को लिखे पत्र में स्वीकरा था कि उसने विको को नहीं पढ़ा था। स्वयं कोंत ने भी उसे अपनी प्रसिद्ध कृति द पाजिटिव फिलासफी के प्रकाशन के दो वर्ष बाद पढ़ा था जैसा कि उसने उल्लेख किया है। वार्जिनिया के अध्यापक अमरीकी विद्वान जार्ज फ्रेडरिक होम्स ने 1852 में कोंत को लिखा था कि उसे (कोंत को) प्राप्त वैचारिकीय दाय का वास्तविक पूर्वाधिकारी विको था कंडोरसेट नही। इससे विको की विद्वता तथा महता प्रतिपादित होती है।

इसी युग में स्काटलैण्ड में ह्यूम (1711–76) जैसे प्रख्यात प्रतिभा सम्पन्न दार्शनि,तत्ववेत्ता, नैतिकावादी, राजशास्त्री सिद्धान्तकार तथा इतिहासकार का प्रादुर्भाव हुआ जिसने मानव क्रियाओं में समरूपता की व्याख्या की। इसके परवर्ती विचारक एडम फर्ग्युनसन (1723–1816) को समाजशास्त्र का वास्तविक पिता कहे जाने का श्रेय दिया जाना भी काफी चर्चा में रहा है। उसकी धारणा है कि समाज मानव की प्राकृतिक दशा है तथा मानव समाज की समुचित अध्ययन समूहों का अध्ययन समूहों का अध ययन है, न कि व्यक्तियों का ध्यातव्य है :

Mankind are to be taken in groups.....and every experiment to this subject should be made with entire societies, not with single man" (P.27)

फर्ग्युसन ने मानव समाज की समरूपता तथा विविध्ता, समाजिक उद्विकास, सामाजिक संघर्ष तथा श्रम विभाजन जैसे गंभीर मुद्दों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। पीटर ने ठीक ही लिखा है – Ferguson's pages on the divisionof labour are a minor trimphe of eighteenth century sociology" किन्तु राबर्ट वीयरस्टेड का कहना काफी सार्थक है कि यदि फर्ग्युसन की समस्त रचनाओं को ध्यान में रखा जाय तो वे प्रमुख प्रस्थापनायें बन जाती है। (P.29)

18वीं सदी–स्काटलैण्ड की विचार यात्रा जान मिलर को उद्घृत किए बिना पूरी नहीं होगी। एडिनवर्ग पर स्तासगो से कुछ मील पूर्व किर्क ओ शाट्टस में 1735 में जन्म मिलर ने ओल्ड कालेज (ग्लसयगो विश्वविद्यालय) में ग्यारह वर्ष की अवस्था में प्रवेश लिया तथा 6 वर्षो तक अध्ययन किया। 1761 में 26 वर्ष की आयु में ग्लासगो विश्वविद्यालय में विधि के आचार्य बने तथा 1801 में अपनी मृत्यु तक सेवारत रहे। उनकी दो कृतियाँ प्रकाशित हुई –

1. The origin f the Distincction of Ranks : An Inquiry into the circumstances which give rise to influence and Authority in the Dif

ferent Members of Society तथा

2. An Historical view of the English Government from the settlement of the Saxons in Britain to the Accesion of the house of Stewart.

उन्होंने अपनी पुस्तक में सामाजिक की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है : आखेट, गोपालन, कृषि तथा वाणिज्य। राबर्ट मैकाइवर ने उन्हें प्रखर चिन्तक तथा अग्रेसर समाजशास्त्री कहा है।

जर्मनी में प्रबोधकालीन युग में कोई विशेष वैचारिक उपलब्धि नहीं मिलती जिसे समाजशास्त्र का पूर्ववर्ती विचार कहा जा सके। गोथे, कांट, लेसिंग, शिलर, हर्डर, तथा महान फ्रेडरिक कुछ जाज्वलयमान नाम दर्शन के क्षेत्र में आते है। इनमें हर्डर के विचारों में समाज वैज्ञानिक चिन्तन की झलक मिलती है।

हर्डर (1744–1803) की प्रसिद्ध "Indian zur philosophis der Menschheel" कृति मुख्यतः सृष्टि के इतिहास से सम्बन्धित है। उसने मानव स्वरूपों की विविधता के बीच एकता का भाव होना स्वीकार किया है। हाब्स से पृथक हर्डर ने मनुष्यों को असामाजिक नहीं माना, एवं शिकारी पशु तो एक दम नहीं। उसने मानव की अन्योन्याश्रयता को उसके विकास के लिए आवश्यक दशा माना।

निष्कर्षत– कहा जा सकता है कि 18वीं सदी में अमेरिका तथा इग्लैण्ड में विको (इटली) तथा फर्ग्युसन (स्काटलैण्ड) की भॉति समाजशास्त्रीय चिन्दन के विकास का मार्ग प्रशस्त करने वाला कोई नहीं था। इनका कोई उत्तराधिकारी नहीं बन सका। इसीलिए उनकी पुस्तके उपेक्षित रहने के बहुत बाद प्रकाश में आयी। फ्रांस की स्थिति पृथक है। यहाँ मांटेस्क्यू, रूसो तथा कंडोरसेट से लेकर सेन्ट साइमन, कोंत तथा बाद में एक विषय तथा परम्परा का रूप ग्रहण करता है तथा जिस पर कोंत 'समजशास्त्र' की मुहर लगता है।

अब हम इस भारत में समाजशास्त्र के विकास पर विचार करें। भारत में समाजशास्त्र का विकास स्वतः स्फूर्त नहीं हुआ। क्योंकि यहाँ एक पृथक सामाजिक दर्शन पहले से ही विद्यामान था। यह था सनातन विचार से ओत–प्रोत। किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पूरी उन्नीसवी सदी तथा बीसवीं सदी का पूर्वाद्ध अत्यन्त जटिलताओं से भरा तथा घटना बहुल रहा है। यह ऐसा युग है जिससे जीवन और चिन्तन की गति प्रत्येक दशाब्दी में तीव्र से तीव्रतर होती जा रहीं थी, जिसमें प्रभावों की विविध्ता का कोई अन्त नहीं था.....इस युग में चिन्तन की प्रगति हर पग पर जीवन के ताने बाने के साथ अधिकारिक घनिष्टता से गुँथ रही थी, दूसरा प्रमुख कारण है विचारों की विविधता तथा प्रचुरता जिसे कोई एक व्यक्ति सुव्यवस्थित रूप प्रदन नहीं कर सकता। 'शायद इस महान दायित्व को एक व्यक्ति की बजाय विद्वानों का दल अधिक सफलता के साथ निभा सकता है। किन्तु शायद इससे महत्वपूर्ण कारण एक भ्रान्ति घर जाना है। व है कि ग्यारहवी सदी में रामानुज के बाद भारतीय दर्शन में उल्लेखनीय कोई भी रचना प्रकाशित नहीं हुई और यह भ्रान्ति निराधार नहीं है। एक की मान्यता है कि इस बौद्धिक आन्दोलन का केवल एक ही लक्ष्य था 'प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव की पुनः स्थापना' जिसे दिनकर ने हिन्दुत्व का नवोत्थान कहा है। दूसरी विचारधारा के अनुसार पुनर्जागरण का अर्थ है 'नया आलोक, भविष्य की ओर बढ़ने की एक क्रान्तिकारी प्रेरणा, घिसे हुए रीति–रिवाजों की जंगीरे से मुक्ति। (तदैव) उनके लिए पुनर्जागरण क्रान्ति सेस कम नहीं, अजीत के पुनरूत्थान के बजाय अजीत से सम्बन्ध विच्छेद है।. .....उनके लिए पिछले डेढ़ सौ वर्षो का भारतीय चिन्तन मूलतः भारतीय मानस का दर्शन, विज्ञान और संस्कृति की आधुनिक धाराओं के अनुरूप बनाने का प्रयास है और आज के युग में वास्तव में 'आधुनिक' का अर्थ है पश्चिमी।

यह भी ध्यातव्य है कि भारतीय संस्कृति में आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता है। नये विचार तथा व्यवहार अतीत से विच्छेद के बिना ही आत्मसात् कर लिए जाते है। नैरन्तर्य का यह भाव वर्तमान तथा भविष्य दोनों को आप्लावित किए रहाता है। कोहन

की दृष्टि में भारतीय समाज की एकता का सच्चा आधार अविछिन्न परम्परा से चली आ रही बौद्धिक विरासत में है। वह आधुनिक राष्ट्रीय भावना से भी अधिक सशक्त है। इसी प्रकार के चिार मैक्समूलर ने भी व्यक्त किया है। तदनुसार 'आर्य भाषा के प्राचीन परिवार के दक्षिणतम निवास भारत में अतीत जितना अधिक दृष्टिगोचर रूप में विद्यमान है। उतना किसी देश में नहीं।

किन्तु पश्चिमी संस्कृति के संघात ने आधुनिक भारत के सामाजिक चिन्तन के अनेक रूपों में प्रभावित किया है। विशेषतः समाजशास्त्रीय चिन्तन की समस्त अवधारणाये पश्चिम समाजशास्त्र से ली गई है। चिन्तन का विश्लेष्य भी पश्चिम से प्रभावित रहा है। बहुत बाद में समाजशास्त्रीयों के एक समूह में भारत विद्या अधिगम जो अपने चिन्तन का परिपेक्ष्य बनाया। भारतीय समाजिक व्यवस्था के तीन प्रमुख घटक ग्राम, परिवार तथा जाति व्यवस्था भारतीय समाजशास्त्र के प्रमुख विश्लेषण बनें। कालान्तर में 'बन्दीपन' की अलातास की अवधारणा से प्रो0 दुबे जैसे शीर्षस्थ समाज वैज्ञानिक ने भी सहमति व्यक्त की। इस समस्या को बड़े विस्तार तथा समीक्षात्मक ढंग से उन्होंने प्रस्तुत किया। उनकी स्पष्ट धारणा है कि पश्चिमी अवधारणाओं का बिना परीक्षण किए प्रयोग नही किया जाना चाहिए। उन्होंने स्पष्टतः स्वीकार किया है।

Ours was (and to an extent centunues to be) largely a sociology of borrowed concepts and methods High presting centres of learning in the affluent west, especially in the unites kingdom and the united states, determined the king of Sciology that should be tought and the type of problems that should be reseache. Foreign models and techniques were accepted uncritically without assessing their relevances or suitability t Indianconditions. This led to distortions in the perspec tives of Indian Sociology and also to its stunted growth.

इसके अनिच्छित परिणाम हुए जिससे बचा जा सकता था। उदाहरणार्थ भारत में जनजाति की जिस अवधारणा को विकसित किया गया वह सामाजिक यथार्थ से दूर तथा वृहद सभ्यतावादी सन्दर्भ में कला है। इसी प्रकार की भ्रान्तियाँ जाति, उपजाति तथा वर्ग इत्यादि अवधारणाओं के प्रयोग में व्याप्त है। क्योंकि समाजशास्त्र में हुई अधिकांश रचनाऐं भारतीय मानस को सम्बोधित नहीं है। समाजशास्त्र के लिए यह स्थिति त्रासद है,क्योंकि इसे पर निर्भरता–संघारर में काम करना पड़ रहा है एक उपग्रह की भाँति।

भारत में समाजशास्त्र के उद्भव की दशा से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार करने के साथ ही हम इसकी अस्मिता की दुर्दशा के कारणों पर विचार करना चाहेंगे। समाजशास्त्र एक आयातित विज्ञान के रूप में भारत आया। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इसे किसी न किसी विषय के साथ जोड़कर उसके अवशिष्ट के रूप में पढ़ाया जाने लगा। कहीं अर्थशार्थ, कहीं राजशास्त्र, कहीं मानव विज्ञान तो कहीं समाजकार्य के विभागों से इसे सम्बद्ध कर दिया गया। इसका दुष्परिणाम हुआ कि भारत में समाजशास्त्र की स्वतंत्र पहचान नहीं कर सकी।

प्रारम्भ में जिन हाथों में समाजशास्त्र गया उनकी अपनी प्राथमिकातएं थी, कुछ बाध्यताये तथा कुछ सीमाएं भी। इसलिए कहीं समाजशास्त्र का उन्मेष 'सामाजिक–आर्थिक दशाओं' से चिपका रहा तो कहीं मानव विज्ञान की अन्तर्वस्तु जैसे संजातीय समस्याओं तथा मिलती–जुलती अन्य श्रेणियों में उलझा रखा। सबसे त्रासद दशा तो वहाँ हुई जहाँ इसे समाजकार्य विभाग से जोड़कर समाजशास्त्रीय उन्मेष को सामाजिक समस्याओं के जगंल में भटकने के लिए छोड़ दिया गया। वहाँ विकलांगो, बाल अपराधियों, वेश्याओं तथा विपत्रों की समस्याओं से इसका सामना हुआ। 1590 के दशक में सामुदायिक विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के प्रभावों का विश्लेषण इसके हिस्से आया। राजय के नीति निर्माण की दिशा में सम्भवतः समाजशास्त्रियों की सहभागिता का यह पहलायद्यपि अधिक महत्वपूर्ण नहीं, अवसर था।

सैद्धानिक दिङ्न्यास की उपेक्षा या उससे कम सरोकार रखना भारत में समाजशास्त्रीय चिन्तन की विपत्रता का एक प्रमुख कारण है यही कारण कि पश्चिम के समाजशास्त्री जब समाजशास्त्र पर आसत्र संकट की बात कर रहे थे तो भारतीय समाजशास्त्रियों को इससे तनिक स्पन्दन नहीं हुआ। उन्हें लगा यह पश्चिमी समाजशास्त्रियों की समस्या है। इससे इनका क्या लेना। किन्तु सम्भवतः इसका दुष्परिणाम सामने आया।

हम समाज को समझने के विविध तथा उपयुक्त संदर्शो को जन्म नहीं दे पाये। तथापि घ्नागरे की आलोचना काफी प्रशस्त नहीं लगती। भारत जैसे सामाजिक संस्कृति, बहुलतावादी सामूहिक संरचना, विभिन्न भाषा, धर्म तथा नृवशीय चेतना वाले देश के लिए समाजशास्त्र को इस समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा। प्रो0 दुबे ने बहुत ठीक लिखा है –

Our sociology will have to address itselrf to the living concerns of today and tomorrow. For this we shall have to identify critical problems, poss the right question, and devise appropriate procedures of investigation in respect of them. Research and reflection will have to go together.....Let us invest more research effort and thought into such areas as indicators of social development, content of quality of life, problems and processes of toughening os a 'soft state'

भारत में समाजशास्त्र ने प्रो0 दुबे ने, जैसा स्पष्ट किया है, जनता तथा नीति निर्माताओं के साथ तादात्म्य (तथा विश्वसीनयता) स्थापित नहीं किया है। इस हेतु जन सामान्य निवारण क्षमता को धारदार बनाने में समाजशास्त्रीय अन्तर्दृष्टि के प्रयोग की आवश्यकता है।

प्रो0 दुबे की स्पष्ट चेतावनी दी है कि समाजशास्त्रिओं को आत्मरति तथा दिग्भ्रमित अन्वेषणों से बचना होगा। पथी ने भी इस विचारों से सहमति व्यक्त की है। उनकी भी धारणा है कि भारत में समाजशास्त्रीय चिन्तन ने 'बन्दीमन' तथा नव–उपनिवेशवादी साम्राज्य का पोषण किया है। तद्नुसार–

In the process of domesticating and emulating alien products of high presting centres of learning in the west with adulation, the dominant new colonial Sociology has actively denigrated indigenous popular culture, knowledge, institutions and traditions accummulated over centuries if observation, practice and reflection.

उसके अनुसार भारत के समाजशास्त्र को हिन्दु मूल्यों विशेषतः ब्राह्मणवादी मूल्यों का समाजशास्त्र होना चाहिए।

इसे अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की भ्रान्त धारणा को दूर करना होगा, तथा पश्चिमी विचारों के अवरण को हटाना होगा। ऐसे में उनका विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण दिखता है।

उनकी स्पष्ट धारणा है कि यदि सामाजिक अनुसंधान को सामाजिक रूपान्तरण की यांत्रिकी बनाना है तो इसे अकादमिक तथा बुद्धि विलास को सीमा से बाहर निकलना होगा। इसके लिए सामूहिक क्रिया तथा विमर्श की आवश्यकता है। तभी सिद्धान्त तथा व्यवहार में अधिक अन्तर्क्रिया सम्भव है, तभी सामाजिक यथार्थ तथा सामाजिक चेतना में तादात्म्य हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए0 के सिंधी (सम्पा0), थियरी एंड आडियोलाजी इन इण्डियन सोशियोलाजी रावत, नई दिल्ली 1996।
2. योगेन्द्र सिंह, इमेज आफ मैन, चाण्क्य, दिल्ली।
3. रेमण्ड एरो, मेन करेन्ट्स इ सोशियोलॉजिकल थाट – पेन्गि्व, 1965।
4. एस0 सी0 दुबे, समय और संस्कृति, वाणी

प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली – 1996
5. जगन्नाथ पथी, समा0 सिंधी , पूर्वोक्त
6. डी0 एन0 धनागरे, थिम्स एण्ड पर्सपेक्टिव इन सोशियोलाजी, रावत नई दिल्ली –1996
7. टी0 वी0 वाटोमोर, सोशियोलाजी एज सोशल क्रिटिसिज्म।
8. टी0 वी0 वाटोमोर, सोशियोलाजी ए गाइट दू प्राब्लम्स।
9. टी0 के0 ऊनम, सिंघी पूर्वोक्त।